त्रिदोष संतुलन का मानव जीवन मे महत्व

प्रवीण बारमाशे[1], डॉ. ज्ञान शंकर तिवारी[2], डॉ. भावना ठाकुर[3]

[1]शोधार्थी, एम .एससी., [2]निर्देशक, [3]विभागाध्यक्षा

[1,2,3]योग एवं मानव चेतना विभाग, अटल बिहारी वाजपेयी हिन्दी विश्वविद्यालय, भोपाल

सार - हमारा शरीर पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पांच महाभूतों से निर्मित है। यत्पिंडे तत्ब्रह्मांडे अर्थात जो पिंड में है वही ब्रह्मांड में हैं। जीवन का विज्ञान आयुर्वेद भी शरीर में पंचभूतों की उपस्थिति स्वीकार करता है। यह मनुष्य या संपूर्ण जीव मात्र के स्वास्थ्य संरक्षण व संवर्धन व रोग निवारण के लिए कृत संकल्प हैं। हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्। मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते। अर्थात जिस शास्त्र में हितमय, अहितमय, सुखमय, दुखमय आयु तथा आयु के लिए हितकर और अहितकर द्रव्यगुण, कर्म, आयु का प्रमाण एवं लक्षण द्वारा वर्णन होता है उसका नाम आयुर्वेद है। आयुर्वेद में व्यक्ति में पंचभूतों, षड् रसों व त्रिदोष की स्थिति मानी गई है। आयुर्वेद षड् रसों को त्रिदोष अर्थात वात, पित्त, कफ के असंतुलन में औषधि रूप में प्रयुक्त करता है। आयुर्वेद में रोगों का स्वरूप ''विकारोः धातु वैषम्य'' के रूप में स्वीकार किया गया है। विकार दोषों की अपेक्षा रखते हैं। वाग्भट्ट ने भी कहा है ''वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयोः दोषाः समासतः'' और ''रजस्तमश्च मनसो द्वौ च दोषा वुदाहतौ।'' इस संबंध में चरक ने भी यही कहा है - वायुः पित्तं कफश्चोक्तिः शारीरो दोष संग्रहः। मानसः पुनरुद्दिष्टो रजश्च तम एव च। अर्थात वायु, पित्त तथा कफ तीनों शरीर के दोष हैं और रज तथा तम। ये दोनों मानस दोष है। रोग और आरोग्य का आश्रय शरीर तथा मन है, शारीरिक रोगों को उत्पन्न करने वाले वात, पित्त तथा कफ है। ये तीनों जब तक समावस्था में रहते है, तब तक ही आरोग्य रहता है। इन तीनों का नाम धातु भी है, अर्थात ये शरीर को धारण करते हैं। परंतु जब ये दूषित हो जाते हैं तब रोगों को पैदा करते हैं- उस समय इन्हें दोष कहा जाता है।

मुख्य शब्द – योग, आहार, पंचभूतों, षड् रसों, वात, पित्त, कफ, रोग ग्रस्त, शरीर पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश.

I. परिचय

1.1 योग एवं आयुर्वेद

योग एवं आयुर्वेद दोनों ही ऐसी प्राचीन पारम्परिक भारतीय विधायें हैं, जिनमें मानवीय स्वास्थ्य के समस्त आयामों के साथ-साथ मानवीय जीवन के अभ्युदय एवं निःश्रेयस पक्षों पर भी साभिप्राय विशद मतिमन्थन हुआ है। मानवीय जीवन के स्वस्थ विकास के लिए मार्गदर्शन प्रदान करने हेतु भारतीय ऋषियों एवं मनीषियों द्वारा इनका प्रवर्तन, समय समय पर युगानुरूप प्रवर्धन एवं परिमार्जन किया जाता रहा है। यदि पौराणिक स्थापनाओं को मान्यता प्रदान किया जाये तो सृष्टि के आरम्भ में हिरण्यगर्भ द्वारा विवस्वान को मानव कल्याणार्थ एक अपृथक विद्या के रूप में आयुर्वेद एवं योग का उपदेश दिया गया जो कि अगली उपदेश परम्परा में वैश्वानर एवं मरुद्गणों के द्वारा आयुर्वेद एवं योग के रूप में द्विभाजित कर दी गयी। आगे के अनेक कालखण्डों में आयुर्वेद एवं योग अपनी अपनी अपेक्षानुसार एक दूसरे का सहर्ष आश्रय ग्रहण करते रहे। लगभग समान तात्विक आधारों पर प्रतिष्ठित होना भी दोनों शास्त्रों के मध्य समन्वयन एवं संयोजन स्थापन हेतु उत्तरदायी रहा है।

वैदिक साहित्य की अथर्ववैदिक संहिताओं में आयुर्वेद एवं योग सम्बन्धी तथ्यों की सार्थक चर्चा दृष्टिगोचर होती है, किन्तु आगे आर्ष औपनिषदिक स्तर पर स्वास्थ्य सम्बन्धी चर्चाओं को गौण स्थान प्राप्त हुआ एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष की साधना को विशेष प्रश्रय प्रदान किया गया। आर्ष औपनिषदिक स्तर पर योग को आध्यात्मिक साधना के रूप में निरूपित किया गया। अतः आर्ष औपनिषदिक स्तर का योग आध्यात्मयोग कहा जाता है।

योगविद्या के विकास के अगले क्रम में भगवद्गीता के वक्तव्यों में योग की चर्चा करते हुए प्रारम्भ से ही योग में स्थित होकर कर्तव्य कर्मों को सम्पन्न करने का निर्देशन हुआ है। यहाँ दैनन्दिन सांसारिक कर्तव्यगत सक्रियता के साथ योग को जोड़कर भगवान कृष्ण ने कर्तव्यकर्मों को आध्यात्म की ओर उन्मुख करने हेतु कर्मसन्यास की अवधारणा एवं साधना का उपदेश दिया। इस कर्मसन्यास की अवधारणा को और भी सुबोधगम्य बनाने हेतु श्रीमदभगवद्पुराण में भगवान कृष्ण द्वारा प्रतिपादित योगमार्ग को ज्ञान, कर्म एवं भक्ति के मार्गों में त्रिधा विभाजित कर दिया गया।

इसके बाद के अगले विकास क्रम में महामुनि पतंजलि ने अपने से पूर्ववर्ती समस्त योग सम्बन्धी प्रतिपादनों का संकलन करते हुए योग को चेतना विकास के विज्ञान के रूप में प्रस्तुत किया। इसी मध्य जैन परम्परा में योग को मोक्ष मार्ग एवं बौद्ध परम्परा में अष्टांगिक मध्यम मार्ग के रूप में विवेचित किया गया। शाक्त एवं शैव परम्परा से संबद्ध तन्त्र एवं आगम ग्रन्थों में प्रवृत्ति एवं निवृत्ति के मध्य सम्यक् समन्वयन पर बल दिया तथा कुण्डलिनी जागरण की महत्वपूर्ण साधना प्रणाली का अवदान प्रस्तुत किया गया। इस प्रकार से तन्त्र एवं आगम मार्ग में साधना को सामान्य जीवनपरक स्वरूप दिया गया।

आदिगुरु शंकराचार्य ने अद्वैत भाव युत शिवभाव की प्राप्ति को ही साधना का चरम लक्ष्य माना परन्तु उत्तरकालीन नाथ एवं हठयोग काल में तथा उसके आगे के भी कालखण्डों में योग विद्या अधिकाधिक शरीरपरक होने लगी। नाथ एवं हठयोग परम्परा को उत्तरोत्तर विकास के क्रम में शारीर की भूमिका के सम्यक् अवबोध तथा मानव शारीर क्रिया प्रणाली के विभिन्न सहवर्ती पक्षों के ज्ञान हेतु आयुर्वेद शास्त्र की शरण ग्रहण करनी पड़ी। वस्तुतः इस अभिवृत्ति का बीजारोपण तो वज्रयान तथा सिद्ध काल मं ही रसायन विद्या के अंगीकरण के साथ हो चुका था। महामुनि पतंजलि ने (400 वीसी) भी

योगसूत्र के कैवल्यपाद (यो0सू0/4/1) में यौगिक सिद्धियों के अर्जन में औषधियों के महत्व को स्वीकार कर लिया था। किन्तु सिद्ध, नाथ एवं हठयोग काल में हठयोगियों ने आयुर्वेद शरीर के समानान्तर अपने विशिष्ट योगरंगरंजित शारीर, विकृति विज्ञान, निदानशास्त्र तथा उपचार तन्त्र को विकसित करने के प्रयास किये। उक्त दिशा में हठयोगियों द्वारा कृत प्रयास कितने ठोस या सफल हैं। यह तो निष्पक्ष शोध एवं समालोचन का विषय हैं।

आधुनिक युग में योग को स्वास्थ्यवर्धन एवं रोगोपचारक विधा के रूप में ही प्रचार एवं प्रसार प्राप्त हो रहा है। आधुनिक युग की अपेक्षानुसार योगशास्त्र के आयुर्वेदशास्त्र के साथ नव्य समन्वयन एवं संयोजन की अपेक्षायें क्रमशः बलवती होकर दृढ़भूमि प्राप्त कर रही हैं। यद्यपि कि पारम्परिक योगविदों के अनुसार योग प्रणाली में शारीरोन्मुखता की प्रवृत्ति की वृद्धि के साथ योग का अपने मूलाधारों से विचलन प्रारम्भ हो गया है किन्तु इस तथ्य की अनदेखी भी नहीं की जा सकती कि इसी के कारण योग विद्या का जनोन्मुखी एवं बहुजन कल्याणकारी स्वरूप विग्रहवान होने लगा है।

II. योग

योग संतुलित तरीके से एक व्यक्ति में निहित शक्ति में सुधार या उसका विकास करने का शास्त्र है। यह पूर्ण आत्मानुभूति पाने के लिए इच्छुक मनुष्यों के लिए साधन उपलब्ध कराता है। संस्कृत शब्द योग का शाब्दिक अर्थ 'योक' है। अतः योग को भगवान की सार्वभौमिक भावना के साथ व्यक्तिगत आत्मा को एकजुट करने के एक साधन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। महर्षि पतंजलि के अनुसार, योग मन के संशोधनों का दमन है।

2.1 योग एक सार्वभौमिक व्यावहारिक अनुशासन

योग अभ्यास और अनुप्रयोग तो संस्कृति, राष्ट्रीयता, नस्ल, जाति, पंथ, लिंग, उम्र और शारीरिक अवस्था से परे, सार्वभौमिक है।यह न तो ग्रंथों को पढ़कर और न ही एक तपस्वी का वेश पहनकर एक सिद्ध योगी का स्थान प्राप्त किया जा सकता है। अभ्यास के बिना, कोई भी यौगिक तकनीकों की उपयोगिता का अनुभव नहीं कर सकता है और न ही उसकी अंतर्निहित क्षमता का एहसास कर सकते हैं। केवल नियमित अभ्यास (साधना) शरीर और मन में उनके उत्थान के लिए एक स्वरुप बनाते हैं। मन के प्रशिक्षण और सकल चेतना को परिष्कृत कर चेतना के उच्चतर स्तरों का अनुभव करने के लिए अभ्यासकर्ता में गहरी इच्छाशक्ति होनी चाहिए।

2.2 विकासोन्मुख प्रक्रिया के रूप में योग

योग मानव चेतना के विकास में एक विकासवादी प्रक्रिया है। कुल चेतना का विकास किसी व्यक्ति विशेष में आवश्यक रूप से शुरू नहीं होता है बल्कि यह तभी शुरू होता है जब कोई इसे शुरू करना चुनता है। शराब और नशीली दवाओं के उपयोग, अत्यधिक काम करना, बहुत ज्यादा सेक्स और अन्य उत्तेजकों में लिप्त रहने से तरह-तरह के विस्मरण देखने को मिलते हैं, जो अचेतनावस्था की ओर ले जाता है। भारतीय योगी उस बिंदु से शुरुआत करते हैं जहां पश्चिमी मनोविज्ञान का अंत होता है। यदि फ्रॉयड का मनोविज्ञान रोग का मनोविज्ञान है और माश्लो का मनोविज्ञान स्वस्थ व्यक्ति का मनोविज्ञान है तो भारतीय मनोविज्ञान आत्मज्ञान का मनोविज्ञान है। योग में, प्रश्न व्यक्ति के मनोविज्ञान का नहीं होता है बल्कि यह उच्च चेतना का होता है। वह मानसिक स्वास्थ्य का सवाल भी नहीं होता है, बल्कि वह आध्यात्मिक विकास का प्रश्न होता है|

2.3 आत्मा की चिकित्सा के रूप में योग

योग के सभी रास्तों (जप, कर्म, भक्ति आदि) में दर्द का प्रभाव बाहर करने के लिए उपचार की संभावना होती है। लेकिन अंतिम लक्ष्य तक पहुँचने के लिए एक व्यक्ति को किसी ऐसे सिद्ध योगी से मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है जो पहले से ही समान रास्ते पर चलकर परम लक्ष्य को प्राप्त कर चुका हों। अपनी योग्यता को ध्यान में रखते हुए या तो एक सक्षम काउंसलर की मदद से या एक सिद्ध योगी से परामर्श कर विशेष पथ बहुत सावधानी से चुना जाता है।

2.4 योग के प्रकार

- हठयोग

हठयोग चित्तवृत्तियों के प्रवाह को संसार की ओर जाने से रोककर अंतर्मुखी करने की एक प्राचीन भारतीय साधना पद्धति है, जिसमें प्रसुप्त कुंडलिनी को जाग्रत कर नाड़ी मार्ग से ऊपर उठाने का प्रयास किया जाता है और विभिन्न चक्रों में स्थिर करते हुए उसे शीर्षस्थ सहस्त्रार चक्र तक ले जाया जाता है। हठयोग प्रदीपिकाइसका प्रमुख ग्रंथ है।

- जप योग

बारंबार सस्वर पाठ दोहराकर या स्मरण कर परमात्मा के नाम या पवित्र शब्दांश 'ओम', 'राम', 'अल्लाह', 'प्रभु', 'वाहे गुरु' आदि पर ध्यान केंद्रित करना।

- कर्म योग

हमें फल की किसी भी इच्छा के बिना सभी कार्य करना सिखाता है| इस साधना में, योगी अपने कर्तव्य को दिव्य कार्य के रूप में समझता है और उसे पूरे मन से समर्पण के साथ करता है लेकिन दूसरी सभी इच्छाओं से बचता है।

- ज्ञान योग

हमें आत्म और गैर - स्वयं के बीच भेद करना सिखाता है और शास्त्रों के अध्ययन, संन्यासियों के सान्निध्य व ध्यान के तरीकों के माध्यम से आध्यात्मिक अस्तित्व के ज्ञान को सिखाता है।

- भक्ति योग

भक्ति योग, परमात्मा की इच्छा के पूर्ण समर्पण पर जोर देने के साथ तीव्र भक्ति की एक प्रणाली है। भक्ति योग का सच्चा अनुयायी अहं से मुक्त विनम्र और दुनिया की द्वैतता से अप्रभावित रहता है।

- राज योग

"अष्टांग योग" के रूप में लोकप्रिय राज योग मनुष्य के चौतरफा विकास के लिए है. ये हैं यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारण, ध्यान और समाधि

- कुंडलिनी

कुंडलिनी योग तांत्रिक परंपरा का एक हिस्सा है| सृष्टि के उद्भव के बाद से, तांत्रिकों और योगियों को एहसास हुआ है कि इस भौतिक शरीर में, मूलाधार चक्र-जो सात चक्रों में से एक है, में एक गहन शक्ति का वास है। कुंडलिनी का स्थान रीढ़ की हड्डी के आधार पर एक छोटी सी ग्रंथि है।

- नाड़ी

जैसा कि यौगिक ग्रंथों में वर्णित है, नाड़ियां ऊर्जा का प्रवाह हैं जिनकी हम मानसिक स्तर पर अलग चैनलों, प्रकाश, ध्वनि, रंग और अन्य विशेषताओं के रूप में कल्पना कर सकते हैं।

III. त्रिदोष सिद्धान्त

आयुर्वेद में 'त्रिदोष सिद्धान्त'की विस्तृत व्याख्या है; वात, पित्त, कफ-दोषों के शरीर में बढ़ जाने या प्रकुपित होने पर उनको शांत करने के उपायों का विशद् वर्णन हैं; आहार के प्रत्येक द्रव्य के गुण-दोष का सूक्ष्म विश्लेषण है; ऋतुचर्या-दिनचर्या, आदि के माध्यम में स्वास्थ्य-रक्षक उपायों का सुन्दर विवेचन है तथा रोगों से बचने व रोगों की चिरस्थायी चिकित्सा के लिए पथ्य-अपथ्य पालन के लिए उचित मार्ग दर्शन है । आयुर्वेद में परहेज-पालन के महत्व को आजकल आधुनिक डाक्टर भी समझने लग गए हैं और आवश्यक परहेज-पालन पर जोर देने लग गए हैं । लेखक का दृढ़ विश्वास है कि साधारण व्यक्ति को दृष्टिगत रखते हुए यहां दी जा रही सरलीकृत जानकारी से उसे रोग से रक्षा, रोग के निदान तथा उपचार में अवश्य सहायता मिलेगी ।

आयुर्वेद की हमारे रोजमर्रा के जीवन, खान-पान तथा रहन-सहन पर आज भी गहरी छाप दिखाई देती है । आयुर्वेद की अद्भूत खोज है - 'त्रिदोष सिद्धान्त' जो कि एक पूर्ण वैज्ञानिक सिद्धान्त है और जिसका सहारा लिए बिना कोई भी चिकित्सा पूर्ण नहीं हो सकती । इसके द्वारा रोग का शीघ्र निदान और उपचार के अलावा रोगी की प्रकृति को समझने में भी सहायता मिलती है ।

आयुर्वेद का मूलाधार है- 'त्रिदोष सिद्धान्त'और ये तीन दोष है- वात, पित्त और कफ ।

त्रिदोष सिद्धान्त आयुर्वेद चिकित्सा-शास्त्र का आधारस्तंभ है। स्वास्थ्य की रक्षा व रोगों के निर्मूलन के लिए इसका सामान्य ज्ञान आवश्यक है।

विसर्गादान विक्षेपैः सोमसूर्यऽनिलास्तथा।

धारयन्ति जगद् देहं कफपित्ताऽनिलास्तथा।।

जिस प्रकार चन्द्रमा अपने बलदायक, सूर्य परिवर्तक और वायु गतिदायक क्रियाओं के द्वारा समग्र संसार को धारण करते हैं, उसी प्रकार कफ, पित्त और वात – यह त्रिदोष समस्त शरीर को धारण करते हैं। संपूर्ण शरीर में व्याप्त त्रिदोष शरीर की स्थिति, परिवर्तन और गति के आधार हैं।

शरीर की सभी गतियाँ (क्रियाएँ) वात के कारण, परिवर्तन (रूपांतरण) पित्त के कारण व श्लेष्ण (गठन) कफ के कारण होता है। जब ये अपने स्वाभाविक रूप (सम अवस्था) में होते हैं, तब शरीर की वृद्धि, बल, वर्ण, प्रसन्नता उत्पन्न करते हैं परंतु जब इनमें से कोई विकृत (विषम) होता है तब शेष दोषों, धातुओं व मलों को दूषित कर रोगों को उत्पन्न होता है।

शरीर के अन्य घटकों को दूषित कर रोग उत्पन्न करने के कारण इन्हें दोष कहा जाता है।

तीनों दोष संपूर्ण शरीर में व्याप्त रहते हैं फिर भी नाभि से निचले भाग में वायु का, नाभि से हृदय तक के मध्य भाग में पित्त का व हृदय के ऊपरी भाग में कफ का आश्रयस्थान है। उस ऋतु, दिन, रात्रि व भोजन के अनुसार इनकी स्वाभाविक ही वृद्धि का शमन होता है। बाल्यावस्था में कफ, युवावस्था में पित्त व वृद्धावस्था में वायु स्वयं ही बढ़ जाते हैं।

• दिन के तीन भागों में से प्रथम भाग (प्रातः 6 से 10) में कफ, द्वितीय भाग (10 से 2) में पित्त व तृतिया भाग (2 से 6) में वायु की वृद्धि होती है। वैसे ही रात्रि के प्रथम भाग (शाम 6 से 10) में कफ, मध्यरात्रि (10 से 2) में पित्त व अंतिम भाग (2 से 6) में वायु की वृद्धि होती है।

• भोजन के तुरंत बाद कफ की, पाचनकाल में पित्त की व पचने के बाद वायु की वृद्धि होती है।

• वसंत ऋतु (फाल्गुन-चैत्र) में कफ का, शरद (भाद्रपद-आश्विन) में पित्त व वर्षा (आषाढ़-श्रावण) में वायु का प्रकोप काल के प्रभाव से हो जाता है।

• वायु की अधिकता से जठराग्नि विषम (अनिश्चित समय पर कभी ज्यादा तो कभी कम भूख लगना), पित्त की अधिकता से तीव्र व कफ की अधिकता से मंद हो जाती है।

IV. त्रिदोषों के गुण कर्म एवं लक्षण

4.1 वात दोष

वायु या वात शब्द का निर्माण

''वा गतिगन्धनयोः ।''

धातु में 'वत' प्रत्यय लगाकर हुआ है ।। जिसका ज्ञान मुख्य रूप से त्वचा द्वारा होता है ।। वायु एक अमूर्त द्रव्य है, जिसका संगठन पंचभौतिक है ।। अमूर्त होने के कारण उसका कोई रूप या आकृति हमको दिखाई नहीं देती है ।। किन्तु वायु का ज्ञान उसके गुण कर्मों के द्वारा किया जाता है ।।

4.2 पित्त

'तप संतापे' धातु से कृदन्त विहित प्रत्यय द्वारा 'तपति इति पित्तं' जो शरीर में ताप, गर्मी उत्पन्न करे उसे पित्त कहते हैं। शरीर में पित्त शब्द से उस स्थान का बोध होता है, जो उष्णता प्रदान करता है।

''तस्मात् तेजोमयं पित्तं पित्तोष्मा यः स पक्तिमान'' - (भोज)

पित्त के द्वारा शरीर में जो कुछ भी कार्य संपन्न होता है, वह अग्नि के समान गुण, कर्म वाला होता है इसलिए पित्त शरीर में अग्निभाव का द्योतक है ।।

4.3 कफ़ दोष

दिवाद्वि गण में पठित श्लिष आलिंग ने दो चीजों को मिलाने वाली इस धातु से 'कृदन्तविहित' प्रत्यय द्वारा 'श्लिष्यतेऽनेनेति श्लेष्मा' जो मिलाता है वह श्लेष्मा कहलाता है ।। इस व्युत्पत्ति से श्लेष्मा शब्द बनता है।

''केन जलेन फलति इति कफः''

अर्थात् जिस जल से जो फलीभूत होता है, अथवा जिसमें जल होता है, उसको कफ़ कहते हैं ।। इस व्युत्पत्ति से कफ़ शब्द बनता है।

''यश्चाश्लिष्य कफः सदा रसयति प्रीणयति सोऽयं कफः ।''

अर्थात् जो परस्पर विघटित अणुओं को आपस में संश्लिष्ट करके उन्हें मिलाने वाला होता है, वह कफ़ कहलाता है ।। शरीर के विभिन्न अवयवों को रस के द्वारा उपश्लेषण तथा पोषण करने वाला श्लेष्मा ही होता है ।। अर्थात् श्लेष्मा के द्वारा शरीर में जो भाव उत्पन्न किये जाते हैं, वे शरीर के पोषण के लिए आवश्यक होते हैं ।। प्राकृत श्लेष्मा के द्वारा जो शरीर को पोषण प्राप्त होता है, वह शरीर की पुष्टि स्थिरता दृढ़ता के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

श्लेष्मा को शरीर के बल का आधार माना गया है ।। अर्थात् शारीरिक बल की पूर्ति के लिए कफ़ की विशेष उपयोगिता है ।। इसी तथ्य को निरूपित करते हुए महर्षि चरक ने लिखा है-

''प्राकृतस्तु बलं श्लेष्मा विकृतो मल उच्यते'' - (च०सू०)

V. त्रिदोष असंतुलन से उत्पन्न रोग

5.1असंतुलित वात से होने वाले रोग

आपने अपने आस पास ऐसे कई लोगों को देखा होगा जो ज़रूरत से ज्यादा बोलते हैं, हमेशा वे बहुत तेजी में रहते हैं या फिर बहुत जल्दी कोई निर्णय ले लेते हैं। इसी तरह कुछ लोग बैठे हुए भी पैर हिलाते रहते हैं। दरअसल ये सारे लक्षण वात प्रकृति वाले लोगों के हैं। अधिकांश वात प्रकृति वाले लोग आपको ऐसे ही करते नजर आयेंगे। आयुर्वेद में गुणों और लक्षणों के आधार पर प्रकृति का निर्धारण किया गया है। आप अपनी आदतों या लक्षणों को देखकर अपनी प्रकृति का अंदाज़ा लगा सकते हैं। इस लेख में हम आपको वात प्रकृति के गुण, लक्षण और इसे संतुलित रखने के उपाय के बारे में विस्तार से बता रहे हैं।

शरीर में वात-पित्त-कफ समान रूप से होने पर व्यक्ति स्वस्थ रहता है। यदि शरीर में इन तीनों का संतुलन बिगड़ जाए तो कई रोग हो जाते हैं। यहां प्रस्तुत हैं

शरीर में वात-पित्त-कफ समान रूप से होने पर व्यक्ति स्वस्थ रहता है। यदि शरीर में इन तीनों का संतुलन बिगड़ जाए तो कई रोग हो जाते हैं। यहां प्रस्तुत हैं वात से होने वाले 80 रोग।

VI. प्रकुपित त्रिदोष की चिकित्सा

6.1 प्रकुपित वायु की चिकित्सा

• वायु के कुपित होने पर उसे यथाशीघ्र शांत करने का उपाय करना चाहिए।

• मधुर, अम्ल, लवण रसयुक्त, स्निग्ध व उष्ण आहार वायु का शमन करता है।

• तिल तेल उत्कृष्ट वायुशामक है। इसका सेवन अथवा औषधि द्रव्यों से सिद्ध तेल से अभ्यंग, सेंक, नस्य (नाक में तेल डालना आदि उत्तम वायुशामक उपाय हैं।

6.2 प्रकुपित पित्त की चिकित्सा

बढे हुए पित्त को संतुलित करने के लिए सबसे पहले तो उन कारणों से दूर रहिये जिनकी वजह से पित्त दोष बढ़ा हुआ है। खानपान और जीवनशैली में बदलाव के अलावा कुछ चिकित्सकीय प्रक्रियाओं की मदद से भी पित्त को दूर किया जाता है।

6.3 प्रकुपित कफ की चिकित्सा

वात और पित्त के साथ शरीर में कफ का संतुलन सही होना जरूरी है। कफ के बढ़ने पर 28 प्रकार के रोग आपको घेर सकते हैं। लेकिन इनसे बचने के लिए आपको ऐसी चीजों से बचना होगा, जो कफ पैदा करती हैं या कफ को बढ़ा सकती हैं।

इसके लिए सबसे पहले उन कारणों को दूर करना होगा जिनकी वजह से शरीर में कफ बढ़ गया है। कफ को संतुलित करने के लिए आपको अपने खानपान और जीवनशैली में ज़रूरी बदलाव करने होंगे। आइये सबसे पहले खानपान से जुड़े बदलावों के बारे में बात करते हैं।

VII. निष्कर्ष

त्रिदोष यानि वात, पित्त और कफ जो आयुर्वेद की अद्भूत खोज है और वैज्ञानिक सिद्धांत से भी पूर्ण है। यदि त्रिदोष समावस्था में है तो शरीर स्वस्थ होगा और विषमावस्था में है तो अस्वस्थ होगा। त्रिदोष के असंतुलन से बचने के लिए ऋतुचर्या, दिनचर्या, आहार-विहार का पालन आवश्यक है। आयुर्वेद में परहेज पालन को सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण दिया गया है जिसे आधुनिक डॉक्टर भी अब सबसे ज्यादा महत्व देने लगे हैं।

भारत में वात रोग का प्रतिशत सबसे ज्यादा है क्योंकि भारत की जलवायु उष्ण कटिबंधीय है। इसके बाद पित्त और कफ का प्रतिशत है। सुबह वात अधिक होता है, दोपहर में पित्त हावी होता है और शाम को कफ की अधिकता होती है।

निरोग का अर्थ है शरीर, मन और चित्त से स्वस्थ। ऐसा वात, पित्त, कफ तीनों के सम होने की स्थिति में ही संभव है। सम का अर्थ है जितना वात चाहिए, जितना कफ चाहिए और जितना पित्त चाहिए उतना ही है। किसी एक की भी अधिकता या कमी रोग का कारण बनता है।

वात/वायु का स्थान है जो कमर से पैर के अंगूठे तक, पित्त का स्थान कमर से छाती तक और कफ का स्थान छाती से सिर तक है। स्वस्थ रहने की दृष्टि से ये तीनों अपने-अपने स्थान से हिलने नहीं चाहिए अर्थात सब अपने-अपने क्षेत्र में रहने चाहिए और इनकी मात्रा में असमानता नहीं आनी चाहिए।

VIII. सन्दर्भ

[1]. अग्निपुराण/3/11.

[2]. कठापनिषद/1/2/12 एव 2/3/10-11.

[3]. भगवद्गीता/2/48 एवं पंचम अध्याय.

[4]. श्रीमदभागवद्पुराण/11/20/6.

[5]. योगसूत्र/4/1.

[6]. चरक/शरीर/1/102.

[7]. चरक/सूत्र/1/42;1/1/54.

[8]. छान्दोग्य उपनिषद्/7.

[9]. श्वेताश्वतर उपनिषद/2/8-9.

[10]. भगवद्गीता/6/13.

[11]. हठप्रदीपिका/1/10.

[12]. आधुनिक चिकित्साशास्त्र (गूगल पुस्तक; लेखक - धर्मदत्त वैद्य)

[13]. रसतरंगिणी का हिन्दी अनुवाद (गूगल पुस्तक; अनुवादक - काशीनाथ शास्त्री)

[14]. HELP - भारत की पहली ऑनलाइन इंटरैक्टिव स्वास्थ्य गाइड; हिन्दी में

[15]. हेल्थ टुडे - इण्डिया - हिन्दी में स्वास्थ्यविषयक जानकारी एवं समाचार